E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
www.allstudyjournal.com
IJAAS 2024; 6(1): 100-102
Received: 08-12-2023
Accepted: 11-12-2024

संगीता कुमारी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी–विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा, बिहार, भारत।

Corresponding Author:
संगीता कुमारी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी–विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा, बिहार, भारत।

प्रेमचंद की कहानियों में दलित-विमर्श

संगीता कुमारी

DOI: https://www.doi.org/10.33545/27068919.2024.v6.i1a.1642

सारांश
प्रेमचंद जी अपने छोटे–से लमही गॉव के माध्यम से उन्होंने भारत की पीड़ित एवं दलित जन की पीड़ा को धड़कनों को सुना था। उनके सामर्थ्य, सीमा एवं सार्थकता को परखा था। फलत: दलित सर्वहारा वर्ग की आत्मा उनके वाड्मय में साकार हो उठी। कलम के इसे सिपाही में सामान्य जन के लिए असीम सहानुभूति थी जो उनके साहित्य में मुखरित हो उठी है।

कुटशब्द: प्रेमचंद, कहानियों, सार्थकता, असीम सहानुभूति, दलित-विमर्श

प्रस्तावना

प्रेमचंद का आर्विभाव हिन्दी-कहानी युग की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। सन् 1916 से लेकर सन् 1936 तक उन्होंने लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखकर हिन्दी-कहानी की एक निश्चित यथार्थवादी दिशा प्रदान की थी। दूसरी ओर दलित-शोषित वर्ग का मार्मिक चित्रण कर उन्होंने समाज की सभी प्रमुख और गौण समस्याओं को मुखर किया।

प्रेमचंद की कहानियों में दलित चेतना, भारतीय-साहित्य में दलित-साहित्य जिस रूप से जुड़ा है, उनमें भारतीय-साहित्य को किसी भी रूप में पृथक नही किया जा सकता, दलित साहित्य का इतिहास कोई पुराना नहीं है, यह साहित्य की वह दुःख ताप और तीक्ष्ण-रोष-भरी धारा है जो जीवन के कटु यथार्थ अनुभवों से अनुप्राणित है।

आज हिन्दी-साहित्य में 'दलित-साहित्य' अपनी एक पूरी पहचान रखता है। दलित-साहित्य एक पूरे विशाल अर्थ एवं समुदाय को लेकर चल रहा है। 'दलित शब्द हमारे लिए एक बहुत-ही प्रेरणादायक शब्द है। हम इसे दल के साथ जोड़ते है, जो सामूहित तौर पर कार्य करता है, जीवन को सामाजिक तरीके से जीता है और समाज से अलगाव दूर करता है। इसी के आधार पर हमने 'दलित शब्द को स्वीकार किया।" जिस साहित्य में मनुष्य समाज की पीड़ा, दर्द और कुद न कर पाने की बेबसी का चित्रण मिलता है, वह सब दलित-साहित्य है। चाहे वह गैर-दलितों द्वारा दलितों के जीवन को लेकर लिखा गया हो। यदि कोई गैर दलित साहित्यकार अपने जीवन की पीड़ा और संवेदना को एक दलित की तरह व्यक्त करता है तो उसे दलित साहित्यकार के बाहर का नहीं। मानन चाहिए। इसी संदर्भ में दलित कवि, कथाकार, 'ओमप्रकाश वाल्मीकी' ने कहा है कि- 'रचनाकार में संवेदनशीलता है और उसकी संवेदनशीलता दलित के साथ है और दलित के यथार्थ को वह संवेदनशीलता से प्रस्तुत करता है तो निश्चित रूप से उसके साहित्य को दलित-साहित्य माना जायेगा। ऐसी कई कहानियाँ है जिनमें दलित यथार्थ जर्बदस्त रूप से मौजूद है।"[1] इन साहित्यकारों में प्रेमचंद जी का नाम अग्रगण्य है, जिन्होंने गैर दलित होते हुए भी दलितों की वेदना को पूर्णरुपेण अभिव्यक्त किया।

दलित-साहित्य वर्तमान का ऐसा विषय बन चुका है जिसका अध्ययन किए बिना संपूर्ण हिन्दी-साहित्य को समझना गलत होगा। दलित साहित्यकारों का मनाना है कि दलित की पीड़ाओं को वही समझ सकता है जिसने इसको भोगा है, यानि कि अनुभूति के आधार पर जबकि दूसरा, खेमा दलितों से इतर लिखे गए साहित्य को जो दलित-जीवन पर उसे भी शामिल करने की बात करा रहा है। दलित-साहित्य के मुख्यधारा में 'दलित-विमर्श' का मुद्दा अस्सी के दशक में उभरा जो नब्बे तक आते-आते काफी चर्चित हो चुका था।

हिन्दी-साहित्य में दलित जीवन की समस्याओं को साहित्य में आरंभ से उठाया जा रहा है। आजादी से पहले प्रेमचंद, निराला यशपाल आदि कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में हाशिए के समाज के पक्ष में मजबूती से लिखा। आजादी के बाद जब भारतीय समाज की तस्वीर काफी बदली मार्कण्डेय, अमरकांत, राजेन्द्र यादव, नैमिशराय, ओम प्रकाश वाल्मीकि, पुन्नी सिंह प्रेम कपाड़िया, डॉ० दयानंद बटोही, डॉ० तेजरजत सिंह, बाबूलाल खंडा, रामचंद आदि चर्चित रचनाकार है। महिला कथाकारों में, उषा चन्द्रा, रमणिका गुप्ता, रजत रानी 'मीनू' मैत्रेयी पुष्पा, सुभ्रदा कुमार जैसे रचनाकार इसमें शामिल होकर मजबूत लेखन किया। प्रेमचंद पहले ऐसे साहित्यकार है जिनकी रचनाओं में दलित-जीवन को प्रमुखता से स्थान मिला है। छूआछूत, जात-पात, आडंबर, कर्म-कांड आदि का वह खूब विरोध करते रहे।

उनकी कहानियाँ सद्गती कफन, ठाकुर का कुआँ आदि में दलित जीवन को त्रासदी को बहुत गहराई से अभिव्यक्त किया गया है और साथ-ही उनके साथ अन्याय करने वाले ब्राहमणवादी विचारधारा के लोगों को भी आड़े हाथों लिया है। 'सद्गति' में प्रेमचंद ने जहाँ चमारों पर हो रहे शोषण और अत्याचार का मार्मिक चित्रण किया है वही 'पूस की रात', कफ़न में दलित प्रतिरोध को साफ-साफ महसूस किया जा सकता है। प्रेमचंद की विशेषता यह है कि वह हर वर्ग आर्थिक शोषण के पक्ष को कभी अपनी नजर से ओझल नहीं होने देते।

प्रेमचंद ने रंगभूमि में एक अछूत जाति के पात्र को नायक बनाकर क्रांतिकारी कार्य किया। सूरदास में गांधी की छवि उतारकर और भी बड़ा काम किया और धर्म-न्यायसत्य की लड़ाई के कारण उसे भारत की वीर त्यागी महापुरषों की परंपरा से जोड़ दिया। वह अंधा है, भिखारी है पर उसकी अंतदृष्टि प्रबल है। उपन्यास सभी स्वर्ण पात्रा-राजा-महाराजा, शासक के उद्योगपति आदि सभी उसके सम्मुख श्रद्ध से झुकते हैं तथा उसकी श्रेष्ठता को स्वीकार करते हैं। उपन्यास के अंत में उसका बलिदान गांधी के बलिदान से कम नहीं है। अत: रंगभूमि तो दलित जाति के नायक को गांधी का प्रतीक बनाकर उसे समाज के शिखर पर स्थापित करती है, न कि किसी जाति का अपमान करती है। सूरदास प्रेमचंद की महान एवं कालजयी सृष्टि है और दलित जाति के लिए तो वह गौरव का केन्द्र है। इस प्रकार गोदान में मातादीन-सिलिया के प्रसंग में दलितों द्वारा हैं। ब्राह्मण मातादीन के मुंह में हड्डी डालने का प्रसंग एक बार फिर प्रेमचंद के दलित-दर्शन के क्रांतिकारी रूप को उद्घाटित करता है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में कहानी की यात्रा सबसे अधिक रोमांचक और परिवर्तनशील रही है। समय और समाज की बदलती सोच ने सबसे पहले कहानी को ही बदला। बीसवीं सदी के कुछ वर्ष पूर्व ही आरंभ हुई कहानी का लोक-जीवन और लोकभाषा के समन्वय से होता है। इस दौर की कहानियाँ तिलिस्मी और लोककथाओं की आंतरिक संवेदना से पूर्ण थी। हिन्दी-कहानी की यथार्थवादी यात्रा प्रेमचंद के आगमन से आरंभ होती है। प्रेमचंद ने हिन्दी-कहानी को आम जनता के द्वार पर लाकर खड़ा कर दिया। ग्रामीन-जीवन की मार्मिक कथा का साहित्य में प्रस्तुति देने के कारण ही प्रेमचंद को कथा सम्राट कहा गया। प्रसाद ने ऐतिहासिक और पौराणिक पात्रों को आधार बनाकर तत्कालीन सामाजिक समस्या को जीवंत किया। उसके बाद नई कहानी अकहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी, अकहानी जैसे कहानी युगों ने कहानी की संवेदना और भाषा को कई पड़ावों की यात्रा करवाई। हिन्दी-कहानी में दलित-जीवन उपेक्षित रहा। दलित पात्रों का सृजन तिरस्कार भाव से हुआ। प्रेमचंद की पूस की रात कफ़न, सद्गति, दूध का दाम, ठाकुर का कुआँ, नशा, मंत्र जैसी कहानियों में दलित-जीचन की विडंबनाओं को स्थान मिला ही। कफ़न और सद्गति ने दलित विमर्श में अपनी उपस्थिति दर्ज की लेकिन कुछ दलित कहानीकारों ने इसे दलित-कहानी माना ही नहीं।

'ठाकुर का कुँआ' के जोख में भी स्वर्णों के प्रति आक्रोशमूलक द्वंद्व की प्रतिक्रिया देखी जाती है। तभी तो वह अपनी रूग्णावस्था (बीमार होने की स्थिति) में भी पत्नी को 'ठाकुर के कुएँ' का पानी लाने की मनाही करता कहता है, "हाथ-पांव तुड़वा आएगी और कुछ न होगा। चुपके से। ब्राह्मण देवता आशीर्वाद देंगे ठाकुर लाठी मारेंगे, साहूजी एक के पांच लेंगे। गरीबों का दर्द कौन दुआर पर झांकने नहीं आता, कंधा देने की तो बड़ी बात है। ऐसे लोग कुएँ से पानी भरने देंगे।"[2]

प्रस्तुत कहानी में चित्रित गंगी और जोखू की विषषता इसी सामाजिक ऊंच-नीच पर टिकी हुई है। 'ठाकुर का कुँआ' शीर्षक ही खुद इस बात को प्रमाणित करता है। यहाँ कुआँ-जिसमें स्वच्छ पानी है, मूल मानवीय अधिकार से इसलिए वंचित है कि कुआँ ठाकुर का है। इस पर ठाकुर का कब्जा सांप्रदायिक कीटाणु के फैलाव की स्वभावित परिणति है। गंगी का विद्रोह उस दयनीय अवस्था का स्वाभाविक चित्रण है।

'ठाकुर का कुआँ' प्रेमचंद जी की एक ऐसी कहानी है, जिसमें दलित वर्ग की जीविका की समस्या का चित्रण हुआ है। प्राण को बचाए रखने के लिए अत्यंत जरूरी चीज पानी के लिए संघर्ष करने वाले दम्पति गंगी और जोखू की कहानी ने जातिभेद की समस्या पर पाठकों के मन में जागरूकता उत्पन्न की है।

प्रेमचंद जी की 'कफन' कहानी हिन्दी की युगांतकारी कहानियों में गिनी जाती है। कहानी में घीसू और माधव दो प्रमुख दोनों पिता-पुत्र आलसी और कमजोर है। प्रेमचंद जी ने जिस गांव का जिक्र अपनी कहानी में किया है, उस गांव में चर्मकारों के कुनबे का चित्रण मिलता है। कहानी में दलित-जीवन का यथार्थ चित्रण है। घीसू और माधव चर्मकार है और सारे गांव में बदनाम है। माधव की पत्नी बुधिया बदकिस्मत दलित नारियों की प्रतीक है। भारतीय-समाज में जहाँ कामचोर, निर्दयी और निर्लज्ज चरित्र भी हैं। दोनों के आलसी होने के कारण रोजी-रोटी पाने में असमर्थ है। दोनों को बुधिया की चिंता नहीं है। बाप-बेटे का जीवन विचित्र है। कर्ज से लदे होने पर भी वे चिंताओं से मुक्त हैं। किसी के खेत से मटर, आलू लाकर भून कर खाते हैं। माधव की पत्नी बुधिया जब प्रसव वेदना से मर रही है, तब दोनों इसी इंतजार में है कि वह मर जाए तो दोनों आराम से सोंए। सबेरे तक बुधिया की मृत्यु हो जाती है। तब वह जमींदार के पास से जितने पैसे मिलते है, उससे बाजार में कफ़न खरीदने जाते हैं। लेकिन शराब की दुकान पर पहुँच जाते है, जहाँ जीवन में पहली बार पूरी बोतल शराब पाते हैं। उसके साथ तली हुई मछलियाँ, पूरियाँ आदि भरपेट खाकर बुधिया को आर्शीवाद देते हैं। एक जगह पर प्रेमचंद ने घीसू के मुख से कहलवाया है, "हाँ बेटा बैकुण्ड में जाएगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं। मरते-मरते हमारी जिंदगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गई वह न बैकुण्ड में जाएगी तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जाएंगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं और अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मंदिरों में जल चढ़ाते है।"[3]

इस अवतरण से स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचंद जी ने परंपरागत रूप से प्रचलित समाज-व्यवस्था में संवर्ण हिन्दू लोगों के द्वारा दलितों के निर्धारित स्थान को दर्शाया है और उन्होंने घीसू को विचारवान व्यक्ति के रूप में लिया है।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि प्रेमचंद जीने दलितों के जीवन में व्याप्त भीषण स्थितियों का चित्रण अपने-साहित्य में किया है। दलितों के दु:ख दर्द के प्रति जन्मी अपार मानवीय संवेदना उन्हें जीवन में समाहित अनेकानेक समस्याओं से निजात दिलाने की दिशा में गतिमान होती हुई पाठक को बेचैन कर देती है। ऐसी भी कहा जा सकता है कि सामंती मूल्यों की निर्मम टूटन का जर्बदस्त नमूना कफ़न कहानी में है।

कफ़न को एक आधुनिक कहानी मानते हुए भी 'इन्द्रनाथ' मदान को लगा कि यह "कहानी जिस तथ्य को उजाकर करती है वह जीवन के तथ्य से मेल नहीं खाता।" कोई भी आदमी, चाहे जितना गरीब हो, अपनी बीबी व बहू के मरने पर माधव और धीसू जैसा ठाकुर का कुआँ, सद्गति आदि कहानियों में तथा गोदान एवं 'कर्मभूमि' उपन्यासों में दलितों के शोषण, उत्पीड़न अपमान और विद्रोह की अभिव्यक्ति हैं। प्रेमचंद पहले ग्रामीण कथाकार व पहले दलितों के पक्षधर थे। उन्होंने दलितों के जीवन पर उस समय लिखा, जब हिन्दी में दलित-साहित्य का 'कान्सेप्ट' भी नहीं था।"[4]

मुंशी प्रेमचंद की पहली कहानी पंच परमेश्वर सन् 1916 में और अंतिम कहानी कफ़न सन् 1936 में प्रकाशित हुई। अत: इस काल को प्रेमचंद युग कहना समीचीन प्रतीत होता है।"[5] 'कफ़न' और प्रेमचंद को दलित विरोधी कहने वाले आलोचक द्वारा लिखी गई रचनाओं पर वहीं प्रतिमान नहीं लागू कर रहे हैं, जो प्रेमचंद के लिए किये जा रहे है। यह नैतिक सापेक्षतावाद है, 'हमारे समुदाय के लेखक जाति सूचक शब्दों का इस्तेमाल करें, गलियों से अपनी कहानी भर डाले, स्त्रियों के बारे में तरह-तरह की कुंठित कल्पनाएँ करें।"[6] तो वह दलित चेतना है, लेकिन यदि गैर दलित लेखक यथार्थ का संकेत करते हुए 'चमार' शब्द का प्रयोग भर कर दें तो वे दलित विरोधी हो जाएँगे, । इसे कहानी को कुछ दलित और कुछ दलित लेखक प्रगतिशील कहानी मानते हैं और दलितों में व्याप्त जाति भेद को उघाड़ने वाले कटु सत्य पर आधारित कहानी मानते हैं ऐसा प्रगतिशील नजरिया 'शवयात्रा' के लिए क्यों? 'कफ़न' के लिए क्यों नहीं?"[7]

जिस दिन दलित स्त्रियों का गैर-जातों द्वारा यौन शोषण रूक जाएगा उस दिन यह घोषणा कर दी जाएगी कि अब दलित जातियाँ दासता से पूर्णतया मुक्त हो गई है।"[8]

निष्कर्ष

हिंदी के महान कथाकार प्रेमचंद की कहानियों में दलित विमर्श की संवेदनाओं का बिंब प्रतिबिंब भाव के संबंध को उसकी समग्र सार्थकता के साथ सहज ही पाया जा सकता है। उनके साहित्य को विराट चेष्टा जीवन के अनुगूँज से व्यक्त है। दरिद्रता में पले–बड़े इस जननायक में सौजन्य और औदार्य को कमी नहीं थी। जीवन की विषमता और दरिद्रता ने उनमें कटूता के बजाय मानवता के प्रति ममता उत्पन्न की। उनमें पूज्य शवों का पोषण किया। प्रेमचंद परिस्थितियों में जनमें एवं विचारों से पोषित कथाकार थे। उन्होंने अपनी कहानियों में माध्यम से दलित वर्ग के दु:ख–दर्द को संवेदित किया। हमने (ठाकुर का कुऑ), (गुल्ली डंगु), (कफन) आदि कहानियों का विवेचन किया है आदि कहानियॉ दलित विमर्श को दृष्टि से उल्लेखनीय है।

संदर्भ

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि से रोहित कौशिक की बातचीत, आजकल पत्रिका, मई 2008 पृ० 37
2. मानसरोवर भाग-5 सरस्वती प्रैंस बनारस, छड़वां संस्करण 1947, पृ० 42
3. संपादक भीष्म साहनी, प्रेमचंद, प्रतिनिध कहानियाँ
4. राष्ट्र भाग-2, पृ० 40 राष्ट्रिय-संस्कृति-संस्थान, नई दिल्ली।
5. आरोह, भाग-1, पृ० 4 राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2006
6. विस्तृत अध्ययन के लिए देखें कथादेश जनवरी 2003 में बजरंग बिहारी तिवारी का विचारोत्तेजक आलेख, 'दलित साहित्य विमर्श में स्त्री'
7. अनिता भारती, 'कफ़न और दलित स्त्री विमर्श' कृति संस्कृति संधान, (संपादक-सुभाष गताड़े) अप्रैल-दिसम्बर 2003 पृ० 211
8. धर्मवीर, 'प्रेमचंद:' सामंत का मुंशी, पूर्वेक्त पृ० 71